❁ दंसण मूलो धम्मो ❁ धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। ❁

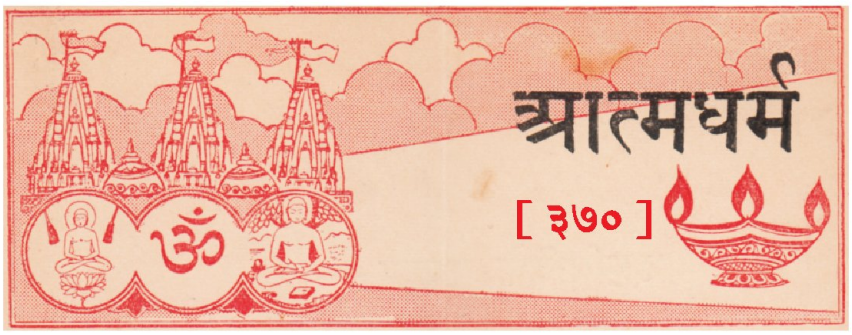

गुरुपद की शोभा

वीतरागी भावलिंगी गुरु के मुखारविंद से बारंबार वीतराग... वीतराग... ऐसा उपदेश ही शोभा देता है:—

वीतरागं वीतरागं जीवस्य निजस्वरूपो वीतरागं।
मुहुर्मुहु गृणति वीतरागं, स गुरुपदं भासति सदा॥

अर्थ—जीव का निजस्वरूप वीतराग है, ऐसा जो बारंबार कहता है, वही गुरुपदवी को शोभा देता है।

भावार्थ—जिनके श्रीमुख से ऐसी वाणी खिरती हो कि त्रैकालिक वीतरागस्वभावी निज चैतन्य आत्मा है, उसके सन्मुख होकर पर्याय में वीतरागता की प्राप्ति करो, वही वीतरागी साधु है। आत्मा परद्रव्य का कुछ कर सकता है और शुभभाव करते-करते निश्चयधर्म होता है,—ऐसा उपदेश साधुपद को शोभा नहीं देता है।

तंत्री—पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार
वीर सं. २५०२ माघ (वार्षिक चंदा रुपये ६=००) वर्ष ३१ अंक-१०

आत्मिक सुख के अभिलाषी जीवो!
शुद्ध चिद्रूप आत्मा का अवश्य स्मरण करो!

न क्लेशो न धन व्ययो न गमनं देशांतरे प्रार्थना,
केषांचिन्न बलक्षयो न न भयं पीडा परस्यापि न।
सावद्यं न न रोगजन्मपतनं नैवान्यसेवा न हि,
चिद्रूपस्मरणे फलं बहु कथं तन्नाद्रियते बुधाः॥

[तत्त्वज्ञानतरंगिणी]

अर्थ—इस परम पावन चिद्रूप का स्मरण करने में न किसी प्रकार का क्लेश उठाना पड़ता है; धन का व्यय, देशांतर में गमन और दूसरे से प्रार्थना नहीं करनी पड़ती है। किसी प्रकार की शक्ति का क्षय, भय, दूसरे को पीड़ा, पाप, रोग, जन्म-मरण और दूसरे की सेवा का दु:ख भी नहीं भोगना पड़ता है, इसलिये अनेक उत्तमोत्तम फलों के धारक इस शुद्ध चिद्रूप का स्मरण करने में हे विद्वानो! तुम क्यों उत्साह और आदर नहीं करते? यह नहीं जान पड़ता।

भावार्थ—संसार में बहुत से पदार्थ ऐसे हैं, जिनकी प्राप्ति में अनेक क्लेश भोगने पड़ते हैं—धनव्यय, दूसरे देश में गमन, दूसरे से प्रार्थना, शक्ति का क्षय, भय, दूसरों को पीड़ा, नाना प्रकार के पाप, रोग, जन्म-मरण और अन्य की सेवा आदि निकृष्ट कार्यों का भी सामना करना पड़ता है परंतु शुद्धचिद्रूप को स्मरण में उपर्युक्त किसी बात का दु:ख भोगना नहीं पड़ता; इसलिये आत्मिक सुख के अभिलाषी विद्वानों को चाहिये कि वे अचिंत्य सुख प्रदान करनेवाले इस शुद्धचिद्रूप का अवश्य स्मरण करें।

[शुद्धचिद्रूप का स्मरण=शुद्धचिद्रूप आत्मा के सन्मुख होकर बारंबार शुद्धरूप परिणमन करना, उसका नाम शुद्धचिद्रूप का स्मरण है। 'मैं शुद्ध चिद्रूप हूँ, मैं शुद्ध चिद्रूप हूँ'—ऐसा स्मरण तो विकल्प एवं राग है।]

वार्षिक चंदा
छह रुपये
वर्ष ३१वाँ
अंक १०

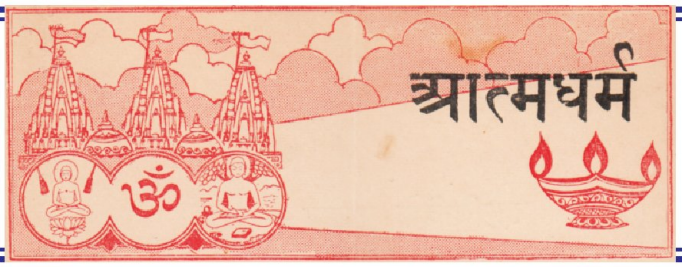

वीर सं. २५०२
माघ
ई.स. १९७६
फरवरी

हे जगत के जीवो! त्रैकालिक सम्यक्स्वभाव का अनुभव करो!

वीतरागी भावलिंगी संत श्री अमृतचंद्राचार्यदेव शुद्धनय का विषयभूत त्रैकालिक शुद्ध आत्मा को मुख्य करके और अशुद्धनय का विषयभूत वर्तमान अवस्था को गौण करके श्री समयसार की १४वीं गाथा का साररूप कलश कहते हैं:—

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरितंतोप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समंतात्
जगतपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥

श्लोकार्थः—जगत के प्राणियों! इस सम्यक्स्वभाव का अनुभव करो कि जहाँ यह बद्धस्पृष्टादिभाव स्पष्टतया उस स्वभाव के ऊपर तैरते हैं, तथापि वे (उसमें) प्रतिष्ठा नहीं पाते, क्योंकि द्रव्यस्वभाव तो नित्य है, एकरूप है और यह भाव अनित्य है, अनेकरूप हैं; पर्यायें द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करती, ऊपर-ऊपर ही रहती हैं। यह शुद्धस्वभाव सर्व अवस्थाओं में प्रकाशमान है। ऐसे शुद्धस्वभाव का, मोहरहित होकर जगत अनुभव करो! मोहकर्म के उदय से उत्पन्न मिथ्यात्वरूपी अज्ञान जहाँ तक रहता है, वहाँ तक वह अनुभव यथार्थ नहीं होता।

आचार्यदेव कहते हैं कि शुद्ध चैतन्य ध्रुवस्वभाव, अभेदस्वभाव, अतीन्द्रिय आनंदस्वभाव अखंडस्वभाव, नित्यस्वभाव, सामान्यस्वभाव और सदृश्यस्वभाव सर्व जीवों के अंतरंग में सदा विराजमान है। उसका अंतर्मुख होकर साक्षात्कार करो,

स्वसंवेदन करो, अवलोकन करो। उससे मिथ्यामान्यता का नाश होता है और निश्चय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। भगवान आत्मा त्रिकाल अतीन्द्रिय आनंद का सागर है, उसका अनुभव करने पर ही पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होता है। उसके सामने धर्मी जीव को इन्द्र के इन्द्रासन का भोग भी काले नाग के समान दिखता है।

त्रैकालिक शुद्ध आत्मा के अतिरिक्त स्त्री, कुटुंब, पैसा, मकान, मोटर, इज्जतादि में किंचित् मात्र भी सुख नहीं है, परंतु वे सब बाह्य पदार्थ दुःख में ही निमित्त हैं। दया-दानादि का शुभभाव की दुःखरूप एवं आकुलतारूप है, उसमें भी किंचित्मात्र सुख नहीं है।

त्रिकाल सत्-स्वभावी आत्मा के सन्मुख दृष्टि करने से निश्चय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। उस सम्यग्दर्शन में आंशिक अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। श्री समयसार गाथा ५ की टीका में अमृतचंद्राचार्यदेव कहते हैं कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव को ज्ञान का वैभव प्रगट हुआ है, वह कैसा है ?''×××निरंतर झरता हुआ—स्वाद में आता हुआ जो सुंदर आनंद है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुर संवेदनस्वरूप स्वसंवेदन से निज वैभव का जन्म हुआ है।'' आचार्य भगवान कहते हैं कि मेरा त्रैकालिक शुद्ध आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का पर्वत है, उसमें एकाग्रता करने से अतीन्द्रिय सुंदर आनंद का झरना झर रहा है। सम्यग्दृष्टि को भी शुद्ध आत्मा का अनुभव होने से अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है, वह अल्प है; किंतु प्रचुर अतीन्द्रिय आनंद तो वीतरागी भावलिंगी मुनिराज को ही होता है। अनुभव के विषय में पंडित बनारसीदासजी ने श्री समयसार नाटक में निम्न प्रकार कहा है:—

अनुभव चिंतामनि रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोखकौ, अनुभव मोख स्वरूप॥

अर्थः—अनुभव चिंतामणि रत्न है, शांतरस का कुआँ है, मुक्ति का मार्ग है और मोक्षस्वरूप है।

आचार्यदेव यह भी कहते हैं कि शुभाशुभभावरूप अशुद्धता का अनुभव न

करो। स्व-सन्मुखता छोड़कर परसन्मुखता करने से वे भाव उत्पन्न होते हैं, उनसे रहित शुद्धस्वभाव का अनुभव करने पर ही जन्म-मरण और उनके दुःखों का अंत आता है, अन्य प्रकार से नहीं।

जिसप्रकार तेल की बूँदें पानी के ऊपर तैरती रहती हैं, परंतु वे पानी के अंतर में एकरूप नहीं हो सकती हैं; तेल और पानी अलग-अलग ही रहते हैं; उसीप्रकार शुद्धचैतन्य भगवान आत्मा से बाह्य, वर्तमान अवस्था में कर्मादिक संबंध से अज्ञान द्वारा किये जानेवाले पुण्य-पाप, राग-द्वेषादि भाव अंतरंग के शुद्ध ज्ञानघन स्वभाव में प्रवेश नहीं कर सकते, परंतु वे ऊपर ही तैरते हैं। वीतरागविज्ञानस्वभावी आत्मा त्रिकाल निर्विकारस्वरूप ही है, उसके आश्रय से ही वीतराग धर्म की उत्पत्ति होती है।

सत् चिदानंद भगवान आत्मा के स्वभाव में शरीर, मन, वाणी का तो प्रवेश नहीं है परंतु बद्धस्पृष्टादि पाँच भाव का भी प्रवेश नहीं है। वे भाव भी ध्रुवस्वभाव के ऊपर-ऊपर तिरते हैं। दया-दान का शुभराग और हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रहादि अशुभराग का भी शुद्ध आत्मा में प्रवेश नहीं है, शुभाशुभराग को जाननेवाली ज्ञान की हीनाधिक पर्याय का भी त्रैकालिक आत्मा में प्रवेश नहीं है। शुभाशुभ पर्यायें पर्यारूप से ही रहती हैं परंतु वे कदापि त्रैकालिक द्रव्यरूप नहीं होती। शुद्ध आत्मा का आश्रय करने पर जो शुद्धपरिणति प्रगट होती है, वह भी त्रैकालिक द्रव्यरूप नहीं होती है।—ऐसा वस्तु का शाश्वत् नियम है।

शुद्ध चैतन्य आनंदघन भगवान आत्मा में बद्धस्पृष्टादि पर्यायों का प्रवेश नहीं हो सकने के कारण वे ऊपर-ऊपर ही तिरती है, वे अंतर में प्रतिष्ठा-शोभा नहीं पाती हैं। शुद्ध ज्ञान-आनंद का पुंज भगवान आत्मद्रव्य और वर्तमान अवस्था—इन दोनों का यथार्थस्वरूप जानकर, वर्तमान पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, शुद्ध आत्मा का लक्ष्य कर, उसकी निर्विकल्प प्रतीति करना, उसी का स्व-संवेदनज्ञान करना और उसी में एकाग्रता करना ही शुद्धचैतन्यस्वभाव का कर्तव्य है, उसमें ही चैतन्य की शोभा है। पुण्य-पापरूपी भावों को अपना मानकर उसका कर्ता होने में चैतन्यरूप आत्मा की शोभा नहीं है, वह चैतन्य का कर्तव्य नहीं है।

निश्चय सम्यग्दर्शन का विषयभूत भगवान आत्मा का स्वभाव तो ध्रुव होने से एकरूप है। बद्धस्पृष्टादि पर्यायों का स्वभाव अनित्य एवं अनेकरूप है। वे भगवान आत्मा में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। जिसप्रकार जल के समूह में तेल डालें तो उस तेल की चिकनाई का जल में प्रवेश नहीं हो सकता, उसीप्रकार भगवान आत्मा आनंदघनस्वभावी है, उसमें ज्ञान की हीनाधिक पर्यायें, राग-द्वेषादि पर्यायें, दु:ख-सुख की पर्यायें प्रवेश नहीं कर सकती, परंतु ऊपर-ऊपर ही तिरती हैं। उसका अर्थ यह है कि जहाँ पर द्रव्य रहता है, वही पर पर्याय भी रहती है, परंतु पर्याय कभी द्रव्यरूप नहीं होती। यदि पर्याय द्रव्यरूप हो जाये तो पर्यायपने का अभाव हो जायेगा और जितनी पर्यायें हैं, वे सब द्रव्य बन जायेंगी।

धर्मी जीव को आत्मा के आश्रय से जो अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंद की पर्याय प्रगट हुई हैं, वे पर्यायें भी सम्यक् स्वभाव के ऊपर तिरती हैं। इसलिये औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक पर्यायें भी परमपारिणामिक भाव में प्रवेश नहीं करती हैं।—ऐसे परमपारिणामिक भाव की महिमा करनेवाले जीव को शरीर, राग एवं पर्याय की महिमा कभी नहीं होती है क्योंकि राग, पर्यायादि की एकतारूप महिमा जीवन का नाश करती है और समय-समय मिथ्यात्व भाव को दृढ़ करती है तथा उसके कारण इस जीव को संसार की चतुर्गति में परिभ्रमण करना पड़ता है।

शुद्ध चैतन्यस्वभावी आत्मा औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक आदि सर्व अवस्थाओं में प्रकाशमान रहता है। चाहे निगोद अवस्था हो या सिद्ध अवस्था हो, उन सब अवस्थाओं में शुद्ध चैतन्य आत्मा त्रिकाल प्रकाशमान है। अब आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं कि हे जगत के जीवो! स्व-पर की एकत्वबुद्धि से मिथ्यात्वभाव उत्पन्न होता है। इसलिये उसको छोड़कर शुद्ध चैतन्यस्वभावी आत्मा का अनुभव करो, इससे अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति होती है और इंद्रियजनित दु:ख का नाश होता है। जब तक शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं है, तब तक रागादिक का अनुभव है और वही दु:ख का अनुभव है। जड़ पदार्थ का अनुभव तो किसी भी आत्मा को नहीं होता है परंतु अज्ञानी जीव को उन पदार्थों के प्रति जो

रागादिभाव है, उसका वह अनुभव करता है। वर्तमान में किसी जीव को ज्ञान का विकास बहुत हो, राग की मंदता भी बहुत हो, किंतु जब तक राग और पर्यायादि की प्रीति है, तब तक उसे ज्ञायकस्वभावी आत्मा की प्रीति नहीं हो सकती है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। जिस जीव को ज्ञायकस्वभावी आत्मा की रुचि है, उसे कदापि राग और पर्यायादि की रुचि नहीं होती है।

वीतरागी दिगंबर संत जो आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद में रमनेवाले हैं, उनका उपदेश है कि इस जीव ने अभी तक शुद्धनय का विषयभूत त्रैकालिक शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं किया है; मात्र राग एवं पर्याय का ही अनुभव किया है। अतः वर्तमान ज्ञान की पर्याय को आत्मा के सन्मुख करके उसका अनुभव करो।

आबाल-वृद्ध सबको जाननेवाला आत्मा ही जानने में आ रहा है; किसी को पर जानने में नहीं आता है। निर्विकल्प शुद्धोपयोग में आत्मा ही जानने में आये, यह बात तो सत्य ही है परंतु सविकल्प दशा में भी आत्मा ही जानने में आता है। इसका अर्थ यह है कि लक्ष्य आत्मा की ओर होने से शुद्ध आत्मा ही सदा जानने में आ रहा है।

—पूज्य स्वामीजी

औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और औदयिकभावों से रहित पंचम परमभाव के स्वरूप का अद्भुत वर्णन

श्री नियमसार गाथा ११० पर पूज्य स्वामीजी ने प्रवचन करते हुए कहा कि कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने मूल गाथा में 'परिणाम' की बात कही है परंतु टीकाकार ने परिणाम में से परमपारिणामिकभाव निकालकर उसके स्वरूप का विशद वर्णन किया है। परमपारिणामिकभाव औदयिकादि चार भावों से आगेचर है क्योंकि उनके आश्रय से वह जानने में नहीं आता; वह पंचम भाव उदय, उदीरणा, क्षय और क्षयोपशम—ऐसे अनेक विकारों से रहित है। ऐसा पंचम भाव द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूपी विषवृक्ष के विपाक मूल को उखाड़ देने में समर्थ है।

एक समय की पर्याय बिना का, ज्ञान-दर्शनमय, नित्यानंद ध्रुवस्वरूप, अविचल रहनेवाला भगवान आत्मा, वह परमभाव है। इसके अतिरिक्त राग, पर्यायादि सब अपरम भाव हैं। निश्चयमोक्षमार्ग, केवलज्ञान और सिद्धपर्याय भी अपरमभाव है, क्योंकि वे सब एक समय की अनित्य पर्यायें हैं। शुद्ध चैतन्यस्वभावी आत्मा नित्यध्रुव, अनादि-अनंत परमपारिणामिकरूप से विराजमान होने के कारण वह परमभाव है। ऐसे परमभाव का इस गाथा में विशद कथन किया गया है:—

जो कर्म-तरु-जड़ नाश के, सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है॥

अन्वयार्थः—कर्मरूपी वृक्ष का मूल छेदने में समर्थ ऐसा जो समभावरूप स्वाधीन निजपरिणाम, उसे आलुंछन कहा है।

जो जीव मोक्ष प्राप्त करने के लिये योग्य है, उसे भव्य कहा जाता है। उसका पारिणामिकभावरूप त्रिकाल स्वभाव शरीर, पुण्य-पापभाव और एक समय की पर्याय से भिन्न होने के कारण परम स्वभाव है। त्रैकालिक आत्मा आनंद का पुंज होने से वह मूलभूत वस्तु है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा आत्मवस्तु का ऐसा स्वरूप कह रहे हैं और अनादि से आत्मवस्तु भी ऐसी की ऐसी रहती आ रही है। शुद्ध-अशुद्ध सर्व पर्यायों को अपरमभाव कहा है।

चार विभावभावों से अगोचर है अर्थात् इन चार भावों के आश्रय से परमपारिणामिकभाव जानने में नहीं आता है। औदयिकभाव से आत्मा जानने में नहीं आता, परंतु औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव से आत्मा जानने में आता है। पंचम परमभाव औदयिकादि विविध विकारों से रहित है। यहाँ विकार का अर्थ विशेष कार्य है। गुणों के विशेषकार्य—विकार को पर्याय कहते हैं। केवलज्ञान, वीतरागचारित्र, अतीन्द्रिय सुख, वे सब विकार-विशेष कार्य हैं। एक समय की केवलज्ञानपर्याय क्षायिकभावरूप है और निश्चयमोक्षमार्ग औपशमिक एवं क्षायोपशमिकभावरूप है, इन पर्यायों के आश्रय से परमपारिणामिकभाव जानने में नहीं आता, परंतु त्रैकालिक निज परमात्मस्वरूप आत्मा के आश्रय से ही वह जानने में आता है। यदि जीव परमभावस्वरूप आत्मा का आश्रय करे तो उसे पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति होगी। यदि वह औदयिकादि चार भावों का आश्रय करेगा तो उसे पर्याय में राग-दुःख की प्राप्ति होगी। अज्ञानी जीव ऐसा मानते हैं कि दया-दानादि के शुभभाव करते-करते हमें शुद्ध आत्मा जानने में आ जायेगा। जबकि शुभभाव बंधभाव है, उसके द्वारा कभी भी आत्मा की प्राप्ति नहीं होगी। शुभभाव से आत्मा की प्राप्ति होगी, ऐसा माननेवाले जीव मोक्ष से बहुत दूर हैं।

त्रैकालिक शुद्ध आत्मा सामान्य है और औदयिकादि चार भाव विशेष हैं। इन विशेष भावों से सामान्य ध्रुव आत्मा रहित है। चारों भाव भेदरूप हैं और ध्रुव आत्मा अभेदरूप है। उसमें पर्याय के भेदों का अभाव है। परमपारिणामिकभाव एक को ही परमभाव कहा है। केवलज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक्वीर्य की पर्यायें

परमभाव नहीं हैं क्योंकि वे मात्र एक समय की पर्यायें हैं। अतः उन्हें अपरमभाव कहा है। महिमावंत परमभाव का अनुभव करने पर शरीरादि अन्य पदार्थों की तो महिमा नहीं रहती परंतु अनुभव करनेवाली औपशमिकादि पर्यायों की भी महिमा नहीं रहती है। जिस जीव को ज्ञान-दर्शन-वीर्य के क्षायोपशमिकभाव में अधिकता-विशेषता भासती है, उसको त्रैकालिक परमभाव का अनुभव कदापि नहीं हो सकता। उस अपरमभाव के आश्रय से राग-द्वेषादि की ही उत्पत्ति होती है, वीतरागभाव की नहीं। ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य का क्षायिकभाव भी त्रैकालिक परमभाव के सामने अपरमभाव है, उसके आश्रय से भी सम्यग्दर्शनरूपी धर्म की उत्पत्ति नहीं होती।

श्री तत्त्वार्थसूत्र में कहा है कि 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्। सत् द्रव्य लक्षणम्।' द्रव्य उसे कहते हैं जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हो। परमपारिणामिकभाव ध्रुव होने से परमभाव है और औदयिकादि चारों भाव उत्पाद-व्ययवाले होने से अपरमभाव हैं। यह परमभाव इन अपरमभावों से रहित है। परमभावस्वभावी आत्मा की दृष्टि करने पर जन्म-मरण के दुःखों का नाश होता है। औदयिकादि चारों भाव पर्यायरूप होने से प्रजा हैं और परमभाव नित्य द्रव्य होने से पिता है। परमभाव जैसे पिता में औदयिकादि पर्यायरूप प्रजा का अभाव है। पर्यायरूप चार भाव छोटे हैं और पंचम भाव उनसे बड़ा है। जिसप्रकार लौकिक में देखा जाता है कि जो घर में बड़ा होता है, उसके आश्रय से ही सारा परिवार रहता है; उसीप्रकार त्रैकालिक महान परमभाव जिसको कारणपरमात्मा एवं कारणजीव भी कहा जाता है, उसके आश्रय से ही निश्चय सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना एवं केवलज्ञान प्रगट होते हैं।

इसप्रकार अभी तक दो बातें सिद्ध हुईः—

(१) त्रैकालिक पंचम परमभाव औदयिकादि चार भावों से रहित है;

(२) इन चार भावों से वह गोचर नहीं किंतु अगोचर है।

औदयिकादि चारों भाव पर्यायरूप से विद्यमान हैं, इस जगत में उनका अभाव ही हो, ऐसा नहीं है। यदि इन भावों का विद्यमानपना न हो तो परमभाव को जाननेवाला-अनुभव करनेवाला कोई नहीं रहेगा। ध्रुव, ध्रुव को नहीं जानता; नित्य,

नित्य को नहीं जानता, परंतु अनित्य, नित्य वस्तु को जानता है; अध्रुव पर्याय, ध्रुव ऐसे द्रव्य को जानती है। क्षणिक, वह शाश्वत् वस्तु को जानती है। त्रैकालिक परमभाव माल है और चारों भाव वारदान हैं। परमभाव मूल्यवान वस्तु है, चारों भावों अपरमभाव होने से मूल्यरहित हैं।

अब परमभाव, ध्रुवभाव, कारणपरमात्मा एवं कारणजीवस्वभावभाव कैसा है ? सो कहते हैं:—

समस्त कर्म—द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म तीनों विष के वृक्ष हैं, जबकि शुद्ध चैतन्यस्वरूपी परमभाव अतीन्द्रिय आनंद से लबालब भरा हुआ अमृत का धाम है। सातावेदनीय द्रव्यकर्म के फल में पैसा, स्त्री, कुटुंब, बँगला, मोटर आदि का संयोग हो, परंतु वे सब विष के वृक्ष हैं। किसी के पास संयोगरूप से ५०-६० लाख रुपया हो, पत्नी सुशील हो, पुत्र आज्ञा का पालन करते हों, लड़कियों की शादी अच्छे खानदान घरों में हो गयी हो, अतः वह अपने को बहुत सुखी मानता है, परंतु वास्तव में देखा जाये तो वह जहर के वृक्षों से घिरा हुआ है। बाह्य वस्तु से आत्मा की शोभा नहीं है परंतु अंतरंग में जो अतीन्द्रिय आनंदस्वभावी भगवान आत्मा है, उसकी सम्यक्श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक रमणता करने से शोभा होती है।

सम्यग्दृष्टि जीवों को सोलहकारण भावना के शुभभाव में तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है परंतु वह जहर है। जिस शुभभाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, वह शुभभाव भी अपराध है। ऐसा श्री पुरुषार्थसिद्धिउपाय में निम्नप्रकार लिखा है:—

रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।
आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोऽयमपराधः॥

अर्थः—इस लोक में रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मोक्ष का ही कारण होता है, दूसरी गति का नहीं। तथा रत्नत्रय के सद्भाव में जो शुभप्रकृतियों का आस्रव होता है, वह सब शुभकषाय और शुभोपयोग से ही होता है अर्थात् वह शुभोपयोग का ही अपराध है परंतु रत्नत्रय का नहीं है। अबंधस्वभावी आत्मा को अबंधपरिणाम से बंध नहीं होता।

पंचम परमभावस्वरूप आत्मा का आश्रय करने पर समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष मूल से उखड़ जाते हैं, त्रैकालिक परमभाव के अवलंबन से निर्जरा भी होती है और बंध का अभाव भी होता है। उस निर्जरा के तीन प्रकार हैं—(१) असद्भूतव्यवहारनय से कर्म का टलना, (२) अशुद्धता का खिरना, (३) शुद्धि की वृद्धि होना।

भगवान आत्मा तो त्रिकाल निरावरण है, उसे आवरण कैसा? उसकी वर्तमान दशा में पर का संग करने से कर्म का आवरण होता है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। त्रैकालिक निरावरण निज कारणपरमात्मा की निर्विकल्प श्रद्धा निश्चयसम्यग्दर्शन है। त्रैकालिक निरावरण आत्मा की विपरीत दृष्टिवाला जीव कुदृष्टि, पर्यायबुद्धि, निमित्तबुद्धि एवं रागबुद्धिवाला है। जो जीव निमित्त, राग एवं पर्याय से अपना कल्याण मानते हैं, वे कुदृष्टि हैं, उन्हें भगवान आत्मा विद्यमान होने पर भी अविद्यमान ही है। परमपारिणामिकभाव विद्यमान वस्तु है, वह उसकी दृष्टि में भी नहीं आयी और ज्ञान में भी नहीं आयी है। भगवान आत्मा ज्ञान-आनंद स्वभावी प्रगटरूप से विद्यमान है, उसकी जिसे दृष्टि नहीं और शरीर की क्रिया एवं राग की क्रिया पर जिसकी दृष्टि है, उसे पर राग ही विद्यमान है परंतु परमभाव विद्यमान नहीं है।

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा एवं ज्ञानी कहते हैं कि हमने अंतर में नित्य ज्ञान-आनंद स्वभावी आत्मा को त्रिकाल शुद्ध ही देखा है। जिन्हें शुद्ध चैतन्य परमभाव के आश्रय से निर्विकल्प श्रद्धा नहीं हुई है, ऐसे अभव्य एवं नित्य-निगोद के जीवों को भी शुद्ध निश्चयनय से परमभाव शुद्धरूप ही है। वस्तु तो वस्तुरूप ही रहनेवाली है, उसका त्रैकालिक परमभाव शुद्ध ही है, वह कभी अशुद्धरूप नहीं हो जाता। नित्य-निगोद के जीव जो कभी त्रस नहीं हुए हैं और अनंत काल तक त्रस नहीं होंगे, उनका परमभाव तो शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध ही है। इस बात को दृष्टांत देकर समझाते हैं—

जिसप्रकार मेरुपर्वत के अधोभाग में रही हुई सुवर्णराशि को सुवर्णपणा ही है, उसीप्रकार अभव्यों का परमस्वभावभाव शक्तिरूप से शुद्ध ही है। उसे कभी भी पर्याय में शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं होगा, तथापि उसका त्रिकाल परमभाव शुद्धरूप ही रहेगा।

श्रीमद्जी ने कहा है कि—'सर्व जीव हैं, सिद्ध सम, जो समझे ते थाय'

समस्त जीवों में अभव्य जीव का भी समावेश हो जाता है। उसका आत्मा भी सिद्धसमान है। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही आत्मानुभव की प्राप्ति हो सकती है परंतु दया, दानादि के शुभभाव से उसकी प्राप्ति नहीं होती। शुभभाव बाह्य वस्तु है, उसकी कीमत करने से अंतर में विराजमान ज्ञान-आनंद स्वभावी आत्मा की कीमत नहीं होती। शुद्ध चैतन्यस्वभावी आत्मा पर दृष्टि करने से शांति मिलती है, अंतरंग की सावधानी से वीतरागता की प्राप्ति होती है और अंतरंग में रमणता करने पर अतीन्द्रिय आनंद के झरने झरते हैं। ऐसा परिणमन अभव्य को कदापि नहीं होता; तो भी उसका परमभाव शुद्ध ही है। अखंडानंद प्रभु आत्मा को ज्ञानियों ने स्वसन्मुख होकर देखा है, इसलिये वे कहते हैं कि हमको सबका आत्मा त्रिकाल शुद्ध ही दिखायी देता है। चाहे अज्ञानियों की वर्तमान पर्याय में शुद्धपना प्रगट न हो, तथापि उनका त्रिकाली आत्मा तो ज्यों का त्यों है।

जिनका मोक्ष अल्प काल में होनेवाला है, ऐसे अति आसन्न भव्य जीवों को नित्यानंद प्रभु आत्मा की दृष्टि हुई है और पर, राग एवं निमित्त से विमुखता हुई है। सम्यग्दृष्टि जीवों को ११ अंग ९ पूर्व के ज्ञान की महिमा भी नहीं है, मात्र शुद्ध चैतन्य स्वरूपी भगवान आत्मा की ही महिमा है, इस कारण उनका परमभाव सफल है। परमभाव की दृष्टि नहीं करनेवाले अज्ञानी जीवों को निरंजन-निराकार आत्मा निष्फल है। अति आसन्नभव्य जीवों को त्रैकालिक परम पंचमभाव की सम्यक्श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक रमणता होने से उन्हें निश्चय-परम-आलोचन का एक भेद आलुंछन प्रगट होता है।

परमभाव आत्मा के आश्रय से ही संसार का मूल छिद जाता है परंतु दया-दानादि के शुभभाव से नहीं। शुभभाव आस्रवभाव होने से संसार में परिभ्रमण करानेवाला है। शुभभाव से धर्म होता है, ऐसी जिसकी मान्यता है, उसे संसार का मूल विशाल होता जाता है। भगवान आत्मा परम आनंद का धाम है, उसके अवलंबन से संसार का विशाल मूल उखड़ जाता है और मोक्ष का मूल दृढ़ हो जाता है। मोक्ष का मूल भगवान आत्मा है।

इस गाथा की टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव ने जीव के औपशमिक,

क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिकभाव कहे हैं, उनका स्वरूप निम्नप्रकार हैं:—

(१) औपशमिकभाव:—आत्मा के स्वसन्मुख पुरुषार्थ द्वारा अशुद्धता का प्रगट न होना अर्थात् दब जाना। आत्मा के इस भाव को औपशमिकभाव कहते हैं।

(२) क्षायिकभाव:—आत्मा के स्वसन्मुख पुरुषार्थ से किसी गुण की शुद्ध अवस्था का प्रगट होना और अशुद्धता का क्षय हो जाना, सो क्षायिकभाव है और उसी समय आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर कर्म-आवरण का नाश हो जाना, सो कर्म का क्षय है।

(३) क्षायोपशमिकभाव:—आत्मा के स्वसन्मुख पुरुषार्थ का निमित्त पाकर जो कर्म का स्वयं आंशिक क्षय और आंशिक उपशम हो तथा उस समय जितना विकार रहे, उतना उसके साथ कर्म का उदय हो, वह कर्म का क्षयोपशम है और जीव के भावकर्म का आंशिक क्षय और उपशम होना और जितना विकार रहे, उतना औदयिकभाव है, उसका नाम धर्म का क्षायोपशमिकभाव है।

(४) औदयिकभाव:—कर्मों के निमित्त से आत्मा अपने में जो विकारभाव करता है, सो औदयिकभाव है।

(५) पारिणामिकभाव:—'पारिणामिक' का अर्थ है सहजस्वभाव, उत्पाद-व्ययरहित ध्रुव-एकरूप स्थिर रहनेवाला भाव पारिणामिकभाव है। औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और औदयिक—इन चारों भावों से रहित जो भाव है, सो पारिणामिकभाव है।

प्रश्न:—औपशमिकभाव को प्रथम लेने का क्या कारण है ?

उत्तर:—श्री तत्त्वार्थसूत्रजी में आचार्य उमास्वामीजी ने प्रथम अध्याय में पहले सम्यग्दर्शन की बात की है; क्योंकि इसके बिना धर्म की शुरुआत नहीं होती। उसीप्रकार दूसरे अध्याय के प्रथम सूत्र में औपशमिकभाव की बात की है, क्योंकि औपशमिकभाव के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। इसलिये प्रथम औपशमिकभाव को लिया है।

प्रश्नः—इन पाँचों भावों से क्या सिद्ध होता है ?

उत्तरः—(१) पारिणामिकभाव के बिना कोई जीव नहीं।

(२) औदयिकभाव के बिना कोई संसारी नहीं।

(३) क्षायोपशमिकभाव के बिना कोई छद्मस्थ नहीं।

(४) क्षायिकभाव के बिना अरहंत और सिद्ध नहीं, अर्थात् क्षायिकभाव के बिना केवलज्ञान और मोक्ष नहीं।

(५) औपशमिकभाव के बिना धर्म की शुरुआत नहीं।

सम्यक्त्व की महिमा

जिसप्रकार तारकाओं के समूह में (तारा ६६९७५ कोड़ाकोड़ी हैं) चंद्रमा अधिक है और मृगकुल अर्थात् पशुओं के समूह में मृगराज (सिंह) अधिक है, वैसे ही ऋषि (मुनि) और श्रावक—इन दो प्रकार के धर्मों में सम्यक्त्व है, वह अधिक है। (मोक्षपाहुड़, गाथा १४४)

❀ ❀ ❀

अज्ञानी जीव कहते हैं कि जब तक शुद्धोपयोग की प्राप्ति न हो, तब तक शुभभाव में रहना योग्य है, ऐसा शास्त्र में लिखा है। समाधान यह है कि जिसने शुभ-अशुभभाव से भिन्न शुद्ध आत्मा का अनुभव किया हो, उस जीव के लिये शास्त्र में लिखा है कि अशुभ से बचने के लिये शुभभाव में रहना योग्य है। जिस जीव को शुद्धोपयोग प्रगट ही न हुआ हो, वह जीव यदि ऐसा माने कि अशुभ से शुभभाव ठीक है—करनेयोग्य है, तो उसको शुभभाव की रुचि है; अतः उसकी दृष्टि कभी भी ज्ञायकस्वभावी आत्मा पर नहीं जायेगी अर्थात् उसको कभी धर्म प्रगट नहीं होगा।

वढवाणशहर (सौराष्ट्र) में
श्री दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा का मंगल-महोत्सव

वढ़वाण शहर के मुमुक्षु भाई-बहिनों की उत्कृष्ट भावना से नगर के बीचोंबीच ६३ फुट उन्नत शिखरबद्ध नूतन सुंदर जिनमंदिर का निर्माण हुआ है। जिसमें विराजमान हुए मूलनायक भरतक्षेत्र के चौबीसवें तीर्थंकर परमदेवाधिदेव १००८ श्री वर्धमानस्वामी तथा अन्य तीर्थंकर भगवान के वीतरागभाववाही विशालकाय भव्य जिनबिम्बों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का मंगल-महोत्सव वीतराग जिनशासन प्रभावक, अध्यात्मयुग सर्जक, पूज्य श्री कानजीस्वामी की मंगल छत्रछाया में मनाया गया।

दिनांक २७-२-७६ को प्रातःकाल पूज्य स्वामीजी लींबड़ी से वढ़वाणशहर में पधारे और मुमुक्षु भाई-बहिनों ने आपका भावभीना हार्दिक स्वागत किया।

[वढ़वाण शहर के पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा-महोत्सव के विशेष समाचार अगले अंक में दिये जायेंगे।]

इन्द्रसभा (१)

वढवाण शहर (वर्धमानपुरी) में नवीन भव्य श्री वर्धमानस्वामी-दिगम्बर-जिनमंदिर में जिनबिम्ब-पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रसंग पर पंचकल्याणक के प्रथम दृश्य में इंद्रसभा हुई थी। श्री नेमिनाथ भगवान का जीव पूर्वभव में सर्वार्थसिद्धि के जयंत नामक अनुत्तर विमान में अहमिंद्रपद पर विराजमान था। उस समय की इंद्रसभा में कैसी धर्मचर्चा हुई, वह आप यहाँ पढ़ेंगे तथा मानो आप भी इंद्रसभा में बैठे-बैठे भगवान के श्रीमुख से वह चर्चा सुन रहे हों—ऐसा आनंद आयेगा।

१. सौधर्म इन्द्रः—देवो! हम बहुत बार इस इंद्रसभा में आत्मा के अनुभव की चर्चा करते हैं और बहुत बार मध्यलोक में तीर्थंकर भगवान के कल्याणक मनाने के

लिये जाते हैं। आज फिर से इस भरतक्षेत्र में जाने का मंगल प्रसंग आया है। उसके अत्यंत आनंददायक समाचार मैं आपको सुनाता हूँ।

१. शची इन्द्राणीः—कहो महाराज! क्या समाचार हैं?

१. सौधर्म इन्द्रः—देवो! सुनो, हमारे स्वर्ग में विराजमान यह देवेन्द्र का छह महीने के पश्चात् भरतक्षेत्र की द्वारिकानगरी में बाइसवें तीर्थंक नेमिनाथ के रूप में जन्म होगा।

२. इन्द्रः—अहो! धन्य हो! धन्य हो! हम सबको तीर्थंकरदेव के कल्याणक मनाने का महान सौभाग्य प्राप्त होगा। तीर्थंकर का आत्मा तो त्रिकाल मंगल है।

२. इन्द्राणीः—वाह, ऐसे मंगलस्वरूप आत्मा को पहिचानने पर हम सबको भी सम्यक्त्वादि मंगलभाव की प्राप्ति होती है।

३ इन्द्रः—अहा! वर्तमान में भी कैसा मंगल आत्मा हमारी इस सभा में साक्षात् विराजमान है।

३ इन्द्राणीः—हाँ, ठीक है। इन होनहार नेमिनाथ तीर्थंकर के साथ हम असंख्य वर्ष तक रहे और उनके श्रीमुख से आत्मा की अद्भुत महिमा सुनकर बहुत से देवों ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

४ इन्द्रः—परंतु अब तो केवल छह महीने ही उनको इस स्वर्ग में रहना है। अतः हमें छह महीने तक उनके श्रीमुख से शुद्ध आत्मा के अनुभव की चर्चा सुनने का लाभ लेना चाहिये।

४ इन्द्राणीः—हाँ देव! आपकी बात उत्तम है; ऐसे धर्मात्मा का सत्समागम जगत में उत्तम है। वह किसी महाभाग्य से ही मिलता है, अतः उनका लाभ अवश्य लेना चाहिये।

५ इन्द्रः—प्रभो! शुद्ध आत्मा की अनुभूति का स्वरूप क्या है? वह कहिये।

[स्वर्ग में विराजमान नेमिनाथ भगवान का जीव उत्तर देता है—]

❀ नेमिनाथः—अहो, अनुभूति की गंभीरता अद्भुत है! हे देवो, सुनो!

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं, आपूर्णमाद्यंतविमुक्तमेकं;
विलीन संकल्पविकल्पजालं, प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति।

परद्रव्य और परभाव से भिन्न ज्ञानस्वरूपी आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति वह सम्यग्दर्शन है।

५ इन्द्राणी:—प्रभो! ऐसा सम्यग्दर्शन कब प्राप्त होत है?

❀ नेमिनाथ:—जीव को जब अपने स्वरूप की सच्ची लगन लगती है और आत्मशांति की यथार्थ जिज्ञासा जागृत होती है, तब वह रागादि अशांत भावों को और चैतन्य की शांति को अत्यंत भिन्न जानता है और तभी वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

६ इन्द्र:—प्रभो, ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा में क्या होता है?

❀ अहो, तब तो आत्मा का संपूर्ण जीवन बदल जाता है, मानो आत्मा मरे हुए में से जीवित हुआ हो! इसप्रकार अलौकिक आनंद से परिपूर्ण चैतन्यभाव प्रगट होता है... उसके साथ अनंत गुणों का उपवन खिल उठता है.. ऐसी दशा प्रगट होना ही आत्मा का सच्चा जीवन है।

६ इन्द्राणी:—प्रभो! आपके श्रीमुख से सम्यग्दर्शन की अद्‌भुत महिमा सुनकर हमें अत्यंत आनंद होता है।

७ इन्द्र:—अहा, सम्यग्दर्शन ही सच्चा आनंदकारी है, इसके समान जगत में अन्य कोई उत्तम वस्तु नहीं है।

७ इन्द्राणी:—हाँ, यदि आत्मा की लगन हो तो स्त्रीपर्याय में अथवा सिंह जैसी पशुपर्याय में भी सम्यग्दर्शन हो सकता है।

८ इन्द्र:—हाँ, और इस सम्यग्दर्शन के प्रताप से अब अंतिम भव में वे जगत के नाथ तीर्थंकर होंगे.. और उनके निमित्त से अनेक जीवों को धर्म की प्राप्ति होगी।

८ इन्द्राणी:—उस समय इनके दिव्यशरीर का रूप जगत में अजोड़ होगा।

९ इन्द्र:—हाँ, परंतु यथार्थ महत्ता तो इनके आत्मा की है, कि जो स्वयं को देह से भिन्न अनुभव करते होंगे।

९ इन्द्राणी:—बालक नेमिनाथ माता के पेट में होंगे, तब भी क्या उनको सम्यग्दर्शन होगा?

१० इन्द्र:—मात्र सम्यग्दर्शन ही नहीं, परंतु साथ में अवधिज्ञान भी होगा।

१० इन्द्राणी:—धन्य वे प्रियकारिणी शिवादेवी... कि जिनकी गोद में मोक्ष का मोती पकेगा!

११ इन्द्र:—धन्य वे समुद्रविजय महाराज, जिनके घर बालक नेमिनाथ का जन्म होगा।

११ इन्द्राणी:—इस मंगल आत्मा का पंचकल्याणक देखकर, चैतन्य की महिमा से कितने ही जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे।

सौधर्म:—अरे! इनको गोद में लेकर पालने में झुलानेवाली माता भी मोक्षगामी होगी।

शची:—और इन छोटे से बाल तीर्थंकर को खिलाकर मैं भी धन्य बनूँगी। तीर्थंकर भगवान की तो कोई अलौकिक महिमा है, इनको देखते ही जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

सौधर्म:—हाँ, परंतु देह से भगवान की पहिचान करे, वह सच्ची पहिचान नहीं है। भगवान के आत्मा को आत्मभाव से पहिचाने, वही सच्ची पहिचान है।

१२ इन्द्राणी:—तीर्थंकर नामकर्म बाँधनेवाला जीव तीसरे भव में अवश्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

१२ इन्द्र:—हाँ, यह सत्य है, परंतु जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बँधता है, वह मोक्ष का कारण नहीं है; किंतु पुण्यबंध का कारण है।

१३ इन्द्राणी:—तो मोक्ष का कारण क्या है?

१३ इन्द्र:—मोक्ष का कारण तो एकमात्र वीतरागविज्ञान ही है, राग तो बंध का ही कारण है।

१४ इन्द्राणी:—तीर्थंकर के जीव का जन्म कब होता है?

१४ इन्द्र:—जगत में जब लाखों जीव धर्म प्राप्त करने की तैयारीवाले होते हैं और धर्मकाल वर्तता है, तब तीर्थंकर के जीव का जन्म होता है।

१५ इन्द्राणी:—जब तीर्थंकर का जन्म होता है, तब सारे जगत में आनंद-आनंद ही फैल जाता है ?

१५ इन्द्र:—अरे, जगत में तो होता ही है किंतु नरक के जीवों को भी साता होती है।

१६ इन्द्राणी:—अहो, ऐसा धन्य अवसर तो जीवन में कभी-कभी ही आता है।

१६ इन्द्र:—भरतक्षेत्र में तो असंख्य वर्षों में मात्र २४ बार ही ऐसा धन्य पल आता है कि जब तीर्थंकर का जन्म होता है; परंतु विदेहक्षेत्र में तो इतने समय में असंख्य तीर्थंकरों का जन्म होता है।

शची:— अहा! तीर्थंकरों का जीवन कोई अद्भुत जीवन है! चैतन्य के आराधक जीवों के जीवन की क्या बात करना ? वह तो अद्भुत ही होता है! इन तीर्थंकरों को तो धन्य है, परंतु इनके परिवार को भी धन्य है!

सौधर्म:—हम सभी तीर्थंकर भगवान के परिवार के ही हैं। चलो, हम सब बाल नेमिनाथ के गर्भकल्याणक का उत्सव मनाने के लिये मध्यलोक में जायें... कुबेरजी!

कुबेर:—जी महाराज!

सौधर्म:—तुम भरतक्षेत्र की द्वारिका नगरी में जाओ, उसकी अद्भुत शोभा करो और समुद्रविजय महाराज के राज्य में पंद्रह मास तक रत्नों की वर्षा करो।

कुबेर:—जैसी आज्ञा महाराज! अहा! जगत के नाथ बाल तीर्थंकरदेव की सेवा करने का सुअवसर महान भाग्य से मुझे मिला है।

सौधर्म:—इस देवलोक की समस्त विभूति द्वारा भी जिनके एक गुण की भी पूर्ण महिमा नहीं कही जा सकती, ऐसे भगवान की सेवा का धन्य अवतार तो मोक्षगामी जीव को ही मिलता है।

कुबेर:—सच ही है। तीर्थंकर की सेवा से हमारी यह देवपर्याय भी धन्य बन जायेगी! चलो, शीघ्र मध्यलोक में जायें और बालक नेमिनाथ के माता-पिता का सन्मान करें।

[नेमिनाथ भगवान की जय हो!]

समुद्रविजय महाराज की राजसभा में भेदज्ञान की सरस चर्चा

वढवाण शहर में श्री दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा-महोत्सव में कल्याणक के प्रारंभ में (फाल्गुन शुक्ला ३) समुद्रविजय महाराज की राजसभा का दृश्य हुआ था; उसमें महाराजा और अन्य राजाओं के बीच धार्मिक तत्त्वचर्चा हुई थी। उसे पढ़कर आप सबको आनंद होगा।

समुद्रविजय महाराज:—अहा! आज की यह राजसभा कोई अद्भुत मालूम होती है! आज तो अंतर में कोई ऐसी प्रसन्नता अनुभव में आ रही है कि मानो रत्नत्रयधर्म का अंकुर फूट रहा हो। अहा! मानो आकाश में से कोई कल्पवृक्ष उतरकर मेरे आँगन में आ रहा हो।

महारानी:—महाराज! आपकी आज बात सुनकर अत्यंत प्रसन्नता होती है; और मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आज राजसभा में अन्य सभी कार्य स्थगित रखें; आज हम आपके श्रीमुख से धर्म की चर्चा ही सुनेंगे!

समुद्रविजय:—वाह..! धर्मचर्चा से उत्तम क्या हो सकता है? प्रसन्नता से आज हम सब धार्मिक तत्त्वचर्चा करेंगे।

१ सभाजन:—महाराज! इस संसार में ऐसे आनंदमय महोत्सव के प्रसंग पर भी ज्ञानी जीव राग से अलिप्त किसप्रकार रह सकता होगा?

समुद्रविजय:—आनंदमय प्रसंग के समय भी, मैं चैतन्यस्वभावी आत्मा हूँ, ऐसे स्वतत्त्व की बुद्धि धर्मात्मा को वर्तती ही रहती है, और वह अपने ज्ञान में अन्य किसी अंश को नहीं मिलाता; वह सर्वदा अलिप्त ही रहता है।

२ सभाजन:—राजन्! साधर्मी भाईयों की ऐसी सभा देखकर बड़ा आनंद होता है।

मुमुक्षु भाईयों का परस्पर साधर्मी वात्सल्य कैसा होता है ? सो कहिये !

समुद्रविजयः—अहा ! जिनका देव एक, जिनका गुरु एक, जिनका सिद्धांत एक और जिन का धर्म एक—ऐसे साधर्मियों को देखकर उसे प्रसन्नता होती है ! उनके साथ धर्मचर्चा, उनका अनेक प्रकार से आदर-सन्मान एवं वात्सल्य द्वारा धर्म के प्रति उत्साह बढ़ाता है। जगत में बड़े-बड़े हजारों मित्र मिलना सरल है, परंतु सच्चे साधर्मी का संग मिलना बहुत कठिन है।

३ सभाजनः—अहा, साधर्मी प्रेम की ऐसी सरस बात आपके श्रीमुख से सुनकर हम सबको बड़ी प्रसन्नता होती है !

४ सभाजनः—महाराज ! ऐसा सत्य दिगम्बर जैनधर्म हम सबको महाभाग्य से मिला है और वर्तमान में तो चतुर्थकाल ही वर्त रहा है। २१वें तीर्थंकर भगवान नमिनाथ का शासन चल रहा है। तो अब २२वें तीर्थंकर भगवान के जीव का जन्म कब होगा ?

समुद्रविजयः—वर्तमान में चारों ओर जो उत्तम चिह्न प्रगट हो रहे हैं, उन्हें देखने पर ऐसा लगता है कि अब शीघ्र ही २२वें तीर्थंकर भगवान के जीव का जन्म होगा। इतना ही नहीं, परंतु मेरे अंतर में धर्म भावना का जो महान आंदोलन चल रहा है, उस पर से ऐसा लगता है कि मानो तीर्थंकर भगवान का जीव हमारे ही आँगन में पधार रहा हो।

५ सभाजनः—अहो महाराज ! आप महा भाग्यवान हो... आप चरमशरीरी हो और आपके कुल में चरमशरीरी तीर्थंकर के जीव का जन्म होगा; आपकी द्वारिका नगरी धन्य बनेगी !

६ सभाजनः—मात्र द्वारिका नगरी ही नहीं, परंतु हम सभी धन्य बनेंगे। बाल तीर्थंकर के जीव को प्रत्यक्ष देखेंगे और उनके दर्शन से अनेक जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर अल्पकाल में संसार से तिर जायेंगे।

७ सभाजनः—अहा ! एक छोटे से बालक के अंतर में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अवधिज्ञान और अतीन्द्रिय आनंद हो... यह एक आश्चर्य की बात है !

८ सभाजनः—आश्चर्य की बात होने पर भी सत्य है और अल्प समय में हम जब नेमिनाथ को शिवादेवी की गोद में खेलते हुए प्रत्यक्ष देखेंगे, तब हम सबका आश्चर्य मिट जायेगा, और आत्मा की अद्भुत-अलौकिक शक्ति कैसी है, उसका हमको साक्षात्कार होगा।

९ सभाजनः—महाराज! अनेक जीव मोक्ष में गये हैं, वर्तमान में जाते हैं और भविष्य में जायेंगे, वह सब किसका प्रताप है?

समुद्रविजयः—सुनिये!

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैंवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

भेदज्ञान की भावना ही मुक्ति का उपाय है।

१० सभाजनः—ऐसा भेदज्ञान किसप्रकार प्रगट हो?

समुद्रविजयः—तुमने बहुत ही सुन्दर प्रश्न पूछा है। भेदज्ञान के लिये सर्वप्रथम आत्मा की लगन लगनी चाहिये। ऐसी लगन लगे कि आत्मा के कार्य के अतिरिक्त जगत का अन्य कोई भी कार्य सुखरूप भासित न हो। ज्ञानी के समीप अपूर्व अचिंत्य चैतन्यतत्त्व सुनकर उसकी ऐसी परम महिमा आये कि अपनी परिणति रागादि से पृथक् होकर शीघ्र ही चैतन्यसन्मुख हो जाये और अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करने लगे। ऐसे भेदज्ञान की निरंतर भावना करनी चाहिये।

११ सभाजनः—अरे! ऐसा भेदज्ञान संसार के सर्व जीव क्यों नहीं करते हैं?

१२ सभाजनः—सुनिये! जगत की स्थिति ऐसी है कि:—

बहुलोक ज्ञानगुणेरहित, आ पद नहीं पामी शके।
रे ग्रहण कर तुं नित्य आ, जो कर्म-मोक्षेच्छा तने॥

१३ सभाजनः—यथार्थ है, चैतन्यतत्त्व अत्यंत गंभीर है। अन्य जीव इसे प्राप्त करें या न करें, परंतु हम सबको जगत की चिंता छोड़करर स्वयं अपना हित कर लेना चाहिये।

१४ सभाजनः—सच है, यह जगत तो विचित्र है। उसके प्रति दृष्टि करने से तो अपने आत्मा के परिणाम बिगड़ते हैं। तीर्थंकर भगवान भी जगत पर से दृष्टि उठाकर अंतर के चैतन्य को साक्षातृ साधकर मोक्ष में चले गये।

१५ सभाजनः—अहा! आज भेदज्ञान की सरस चर्चा हुई। आज का दिव्य प्रकाश ऐसा लगता है कि मानों किसी तीर्थंकर के जीव का अपनी नगरी में आगमन हो रहा हो।

महारानीः—आज की चर्चा में भेदज्ञान की महिमा सुनकर मुझे बहुत ही आनंद हुआ। मेरा अंतरंग भी किसी अचिंत्य प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है। आकाश से मानों आनंद की वर्षा हो रही हो, ऐसा लगता है!

[रानियाँ भी तत्त्वचर्चा में आनंद से भाग लेकर अपने उद्‌गार प्रगट करती हैं—]

१. अहो, राजमाता! आपका पुण्य भी कोई अलौकिक है!

२. आपके आत्मिक भावों में भी कोई अद्‌भुत परिवर्तन हो रहा है!

३. माताजी! आपके सान्निध्य में रहने से हमें भी उत्तम भावनाएँ जागृत होती हैं।

४. माताजी! जगत में माताएँ तो अनेक हैं, परंतु इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकर के जीव की माता तो आप एक ही हो।

५. बालक नेमिनाथ जिनकी गोद में आये, वह माताजी भी मोक्षगामी ही होती हैं।

६. अहो, स्त्री पर्याय में भी आत्मा की साधना हो सकती है!

७. अरे, पंचम काल की स्त्रियाँ भी आत्मसाधना करेंगी तो इस चतुर्थकाल में हम क्यों न करें?

८. जब हम आत्मा की साधना करें, तभी हमारे लिये धन्यकाल है।

९. इक्कीस तीर्थंकर तो हो चुके हैं, अब बाईसवें तीर्थंकर के जीव का जन्म होगा।

१०. और तीर्थंकर भगवान के शासनकाल में अनेक जीव आत्मा का कल्याण करेंगे।

११. तीर्थंकर के शासनकाल में गणधरों का प्रगटपना होगा और अनेक मुनि भी होंगे।

१२. आत्मा को जाननेवाले अनेक श्रावक एवं श्राविकाएँ भी होंगे।

१३. पंचम काल में भी जैनधर्म की धारा अखंडरूप से बहती रहेगी।

१४. अहो, तीर्थंकर के जीव का जन्म होने पर अपनी द्वारिका नगरी भी धन्य बनेगी!

[दिव्य बाजे बजते हैं.... रत्नों की वृष्टि होती है]

१५. अहो, यह दिव्य बाजे किसके सुनायी देते हैं? और यह रत्नवृष्टि कहाँ से हो रही है?

१६. अहो! देखो, देखो! स्वर्ग में से कुबेर आ रहा है, साथ में ५६ कुमारिकाएँ भी हैं।

[कुबेर आकर नमस्कार करके कहता है]

कुबेर:—अहो! समुद्रविजय महाराजा! आप धन्य हो! अहो! शिवादेवी माता! आप भी धन्य हो! छह महीने के पश्चात् २२वें तीर्थंकर का जीव आपकी गोद में आयेगा, इसलिये इन्द्र महाराज ने मुझे यह भेंट लेकर आपकी सेवा में भेजा है। हे जगत् पिता! हे जगत माता! तीर्थंकर का जीव जिसके घर में पधारे, उसकी महिमा की क्या बात करना!

कुबेर:—हे माता! तीर्थंकर के जीव के आगमन से आपका शरीर तो पवित्र हुआ, आपका आत्मा भी सम्यक्त्वादि से शोभायमान होगा। हम सब स्वर्ग के देव-देवियाँ, आपका सन्मान करते हैं। दिग्कुमारी देवियाँ भी माताजी की सेवा करने आयी हैं।

देवियों! तुम माताजी के साथ महल में जाओ और छह महीने तक उनकी सेवा करो।

देवियाँ:—जैसी आज्ञा!

इन्द्रसभा (२)

वढ़वाण शहर में श्री दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के समय, गर्भकल्याणक के प्रसंग पर दूसरी इन्द्रसभा में हुई धार्मिक तत्त्वचर्चा:—

१ इन्द्र:—हे देवो! जगत में सारभूत वस्तु वीतराग-विज्ञान ही है। ऐसे वीतराग-विज्ञान का जगत को संदेशा देने के लिये ही तीर्थंकर का जन्म होता है।

१ इन्द्राणी:—हाँ देव! अब इस भरतक्षेत्र में २२वें तीर्थंकर के जीव का जन्म होगा और वे सारे जगत को मोक्ष का संदेशा देंगे।

२ इन्द्र:—अपना यह इन्द्रपद भी वास्तव में सारभूत नहीं परंतु आत्मा का अतीन्द्रिय सुख ही सारभूत है।

२ इन्द्राणी:—इस जीव के लिये लक्ष्मी, शरीर, सुख-दु:ख अथवा शत्रु-मित्रादि सर्व अध्रुव हैं। ध्रुव वस्तु तो अपना उपयोगस्वरूप आत्मा ही है।

३ इन्द्र:—अहा, चैतन्य की अनुभूति के सामने तो शुभराग भी असार एवं दु:खरूप भासित होते हैं।

३ इन्द्राणी:—आप कहते हैं, वह सत्य है। हमें जो चैतन्य के सुख का स्वाद आता है, वह इस इन्द्रपद के वैभव में भी नहीं आया है

४ इन्द्र:—अरे, जहाँ तीर्थंकर प्रकृति भी सारभूत नहीं, वहाँ अन्य की तो क्या बात?

४ इन्द्राणी:—यदि तीर्थंकर प्रकृति भी सारभूत नहीं है, तो फिर तीर्थंकर की इतनी महिमा क्यों करते हो?

५ इन्द्र:—सुनो! तीर्थंकरदेव हम सबको वीतराग रत्नत्रय का उपदेश देकर भवसमुद्र से

पार करते हैं, इसीलिये उनकी इतनी महिमा की जाती है।

५ इन्द्राणी:—आप जो कहते हैं, वह सत्य है; हम सब राग का पोषण करने के लिये तीर्थंकर को नहीं मानते, परंतु वीतरागभाव प्रगट करने के लिये ही उनकी इतनी महिमा करते हैं।

६ इन्द्र:—वास्तव में, वीतरागभाव ही तीर्थंकरों का मार्ग है और उससे ही तीर्थंकरदेव की पहिचान होती है।

६ इन्द्राणी:—अहा, धन्य है वह जीवन! जिसमें वीतरागरस के स्वाद का वेदन होता है।

७ इन्द्र:—अहो! वर्तमान में नेमिनाथ तीर्थंकर का जीव शिवादेवी माता के उदर में बैठे-बैठे ही चैतन्यरस का स्वाद ले रहा है!

७ इन्द्राणी:—परंतु जब भगवान का जन्म होगा, तब जिसप्रकार सूर्य की किरणों से कमल खिल जाते हैं, उसीप्रकार बाल तीर्थंकर के दर्शनों से हमारे हृदयकमल खिल उठेंगे!

८ इन्द्र:—अहो! राग के समय भी धर्मी जीव को चैतन्यस्वाद का वेदन ही वर्तता है। यह आश्चर्यकारी बात तो ज्ञानी ही समझते हैं।

८ इन्द्राणी:—ज्ञानी को चैतन्य की शांति और राग की आकुलता—दोनों एक साथ ही वर्तते हैं, फिर भी वह उनको एक-दूसरे में किंचित् नहीं मिलाता। दोनों धाराएँ भिन्न ही रहती हैं; उनका रहस्य ज्ञानी ही समझता है।

९ इन्द्र:—तीर्थंकर नेमिनाथ का आत्मा वर्तमान में ऐसी मिश्रधारारूप से परिणमन कर रहा है। उसमें ज्ञानधारा और रागधारा दोनों को भिन्न जानना ही भगवान की सच्ची पहिचान है।

९ इन्द्राणी:—तीर्थंकर भगवान की ऐसी पहिचान से उनके जो पंचकल्याणक महोत्सव मनाये जाते हैं, वे अद्भुत आनंदकारी होते हैं।

१० इन्द्र:—अहो, तीर्थंकर! जिनका नाम सुनने पर हर्ष होता है, तो उनके साक्षात् दर्शन की क्या बात करना?

१० इन्द्राणी:—आज तीर्थंकर नेमिनाथ के जीव ने शिवादेवी माता के उदर में पदार्पण किया है; हम सब उनका पंचकल्याणक महोत्सव मनाकर धन्य बनेंगे!

११ इन्द्र:—अहो, ये शिवादेवी माता और समुद्रविजय महाराज भी धन्य हैं!

११ इन्द्राणी:— **प्रभु पादपंकज जहाँ हुए उस देश को भी धन्य है,**
उस गाम-पुर को धन्य है वह मात-कुल भी वंद्य है॥

१२ इन्द्र:—अहो! तीर्थंकर के जीव का जन्म होने पर सारे जगत में प्रकाश फैल जाता है और नारकी के जीव भी क्षणभर के लिये सुख प्राप्त करते हैं। देव भी तीर्थंकर के जीव की सेवा करने के लिये मध्य लोक में जाते हैं।

१२ इन्द्राणी:—मनुष्यलोक में किसी समय एक साथ एक सौ सत्तर तीर्थंकर परमात्मा अरहंत दशा में विचरण करते हैं

१३ इन्द्र:—विदेहक्षेत्र में अभी बीस तीर्थंकर भगवान विचरण कर रहे हैं; भरतक्षेत्र में अभी कोई तीर्थंकर नहीं है, परंतु सवा नौ महीने पश्चात् २२वें तीर्थंकर के जीव का जन्म होगा।

१३ इन्द्राणी:—तीर्थंकर परमात्मा का द्रव्य त्रिकाल मंगलरूप है। शुद्धनय से देखनेवाला अपने आत्मा को भी मंगलरूप देखता है।

१४ इन्द्र:—भरतक्षेत्र में अभी 'भावतीर्थंकर' नहीं परंतु द्रव्यतीर्थंकर तो विराजमान हैं, ऐसे द्रव्यतीर्थंकर वर्तमान में शिवादेवी माता के उदर में विराजमान हैं।

१४ इन्द्राणी:—अहो! द्रव्यतीर्थंकर की भी इतनी महिमा! तो फिर भावतीर्थंकर के महिमा की क्या बात करना?

१५ इन्द्र:—भावतीर्थंकर की पहिचान करने पर तो सम्यग्दर्शन होता है। कहा है कि:—

जे जाणतो अर्हंतने गुण-द्रव्य ने पर्ययपणे,
ते जीव जाणे आत्मने तसु मोह पामे लय खरे।

१५ इन्द्राणी:—सवा नौ महीने पश्चात् नेमिनाथ तीर्थंकर के जीव का जन्म होगा और उनका शासन भरतक्षेत्र में अनेक वर्षों तक चलेगा।

१६ इन्द्रः—अहो! आज की घड़ी धन्य है क्योंकि आज २२वें तीर्थंकर का गर्भकल्याणक मनाने का सुअवसर आया है।

१६ इन्द्राणीः—तीर्थंकरभगवान के कल्याणक देखकर अपने आत्मा का कल्याण होगा, इसलिये तो उनको कल्याणक कहा जाता है।

कुबेरः—यहाँ से आज ही तीर्थंकरभगवान का जीव देवपर्याय छोड़कर शिवादेवी माता के उदर में चला गया है; चलो हम सब आनंद से उनका उत्सव मनाने चलें!

हाँ, चलो, सब मिलकर आनंद से महोत्सव मनायेंगे।

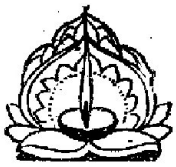

ज्ञानगोष्ठी

प्रश्नः—साधक जीव के शुभोपयोग को मोक्ष का परंपरा-हेतु कहा जाता है, वह किस अपेक्षा से है?

उत्तरः—साधक जीव के शुभोपयोगरूप व्यवहार-व्रत शुद्धोपयोग का हेतु है और शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है, इसलिये उपचार से व्यवहार-व्रत को मोक्ष का परंपरा-हेतु कहा है। वास्तव में तो शुभोपयोगी मुनि को मुनियोग्य शुद्धपरिणति ही (शुद्धात्मद्रव्य का अवलंबन करती है इसलिये) विशेष शुद्धिरूप शुद्धोपयोग का हेतु है और वह शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है। इसप्रकार इस शुद्धपरिणति में रहे हुए मोक्ष के परंपरा-हेतुपने का आरोप—उसके साथ रहनेवाले—शुभोपयोग में करके व्यवहारव्रत को मोक्ष का परंपरा-हेतु कहा

जाता है। जहाँ शुद्धपरिणति ही न हो, वहाँ वर्तते हुए शुभोपयोग में मोक्ष के परंपरा-हेतुपने का आरोप भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि जहाँ मोक्ष का यथार्थ परंपरा-हेतु प्रगट ही नहीं हुआ है—विद्यमान ही नहीं है, वहाँ शुभोपयोग में आरोप किसका किया जाये?

आशय यह है कि वीतरागी भावलिंगी मुनिराज ने शुद्धचैतन्य भगवान आत्मा का अनुभव करके तीन कषाय के अभाव में निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धपरिणति प्रगट की है। वह शुद्धपरिणति वास्तव में विशेष शुद्धिरूप शुद्धोपयोग का हेतु है और शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है, इसलिये शुद्धपरिणति ही मोक्ष का परंपरा-हेतु है। परंतु भावलिंगी मुनिराज को परिपूर्ण वीतरागता नहीं होने से उन्हें शुद्धपरिणति के साथ पंच-महाव्रतादि का जो विकल्प है, वह यद्यपि बंध का ही कारण है, तथापि शुद्धपरिणति के साथ रहनेवाला होने से मोक्ष का परंपरा-हेतु है, ऐसा उपचार से कहा जाता है। मिथ्यादृष्टि के व्यवहारव्रतादि बालव्रत एवं बालतप होने से वे संसारपरिभ्रमण का हेतु हैं।

❀ आत्मा अनादिनिधन चैतन्यस्वभावी वस्तु है, उसमें अनंत गुण (अनंत शक्तियाँ) हैं। उनमें एक प्रभुत्व नाम की शक्ति है जो द्रव्य के आश्रय से है किंतु अन्य गुणों के आश्रय से नहीं। आत्मा में एक विभुत्व नाम की शक्ति भी है, जिसके कारण अस्तित्व, वस्तुत्व, ज्ञान, सुख आदि जो अनंतगुण हैं, वह प्रत्येक गुण के अन्य सभी गुणों में व्यापक है।

प्रभुत्वशक्ति का रूप भी सर्व गुणों में व्याप्त होने से समस्त गुण प्रभुत्व शक्ति से संपन्न हैं अर्थात् प्रत्येक गुण अखंडित प्रताप (सामर्थ्य) की स्वतंत्रता से सुशोभित है। जब एक गुण की इतनी महिमा है तो अनंत गुणों का समूह आत्मद्रव्य के अखंडित प्रताप की स्वतंत्रता की महिमा का तो कहना ही क्या? ऐसे महिमावंत ध्रुव चैतन्यतत्त्व की दृष्टि करने पर अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आये, वही सच्चा मोक्षमार्ग है।

❀ सर्वप्रथम मूल बात तो यह है कि चाहे शुद्ध पर्याय हो या अशुद्ध पर्याय हो—वे सब स्वतंत्र हैं; ऐसा जिसको ज्ञान नहीं, उसे गुण एवं गुणों का पिण्ड द्रव्य भी

स्वतंत्र है, ऐसी प्रतीति कभी नहीं हो सकती। पर्याय जो कि व्यक्त है, उसकी स्वतंत्रता का ज्ञान नहीं है, उसको अव्यक्त ऐसे द्रव्य-गुण की स्वतंत्रता का भी ज्ञान नहीं हो सकता है। द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतंत्रता का ज्ञान होने पर ही वर्तमान ज्ञानपर्याय पर का लक्ष्य छोड़कर आत्मा के सन्मुख होती है। शुद्ध आत्मा के सन्मुख होने पर ही मोक्ष की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

प्रश्नः—आत्मा के साथ ज्ञान का तादात्म्य है, फिर भी उसकी सेवा नहीं की—ऐसा क्यों कहते हो?

उत्तरः—जिसने मिठास का प्रत्यक्ष स्वाद लिया हो, उसे निर्णय होता है कि शक्कर के साथ मिठास का तादात्म्य है। उसीप्रकार आत्मा के साथ ज्ञान का तादात्म्य है, परंतु इसका सच्चा ज्ञान किसे होगा? जिसने स्वसन्मुख होकर ज्ञान का स्वाद लिया हो, उसे ज्ञात होता है कि आत्मा के साथ ज्ञानादि का तादात्म्यसंबंध है और तभी उसने आत्मा की सेवा की, ऐसा कहा जाता है।

प्रश्नः—आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान किये बिना पर का सच्चा ज्ञान होता है या नहीं?

उत्तरः—आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान करने पर ही जीव को पर का सच्चा ज्ञान होता है। इस बात का स्पष्टीकरण श्री समयसार कलश-टीका कलश ६० में निम्नानुसार किया है—

(१) ×××जिसप्रकार अग्नि के संयोग से पानी उष्ण किया जाता है, फिर उष्ण पानी, ऐसा कहा जाता है, तथापि स्वभाव विचारने पर उष्णपना अग्नि की है, पानी तो स्वभाव से शीतल है; उष्णपने और शीतपने का भेद निजस्वरूपग्राही ज्ञान से प्रगट होता है। राग से भिन्न चैतन्यस्वभावी निजस्वरूप का ज्ञान जिसने किया है, वही शीत-उष्ण के भेद को यथार्थ जानता है।

(२) जिसप्रकार लवण के संयोग से व्यंजन या साग बनाया जाता है, वहाँ व्यंजन या साग खारा है—ऐसा कहा जाता है, जाना भी जाता है; स्वरूप विचारने पर खारा लवण है, व्यंजन तो जैसा है, वैसा ही है। ऐसा यथार्थ भेद निजस्वरूपग्राही ज्ञानवान को ही होता है, अन्य को नहीं।

प्रश्नः—द्रव्य-गुण शुद्ध है तो फिर पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आयी ?

उत्तरः—जब वर्तमान पर्याय पर का लक्ष्य करती है, तब उसमें विकार होने की क्षणिक योग्यता है, यदि वह पर्याय त्रिकाल आत्मद्रव्य का आश्रय करे तो शुद्ध हो जाये।

❀ श्री तत्त्वार्थसूत्र में कहा है कि 'द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः' गुण द्रव्य के आश्रय से रहते हैं, गुण के आश्रय से कोई गुण नहीं रहता। श्री चिद्विलास में कहा है कि एक गुण में दूसरे गुण का 'रूप' होता है क्योंकि उसमें विभुत्व नाम की शक्ति है। जैसे (१) ज्ञान गुण में अस्तित्वगुण का निमित्त होने से उसमें अस्तित्वगुण का रूप है, परंतु यथार्थतया तो ज्ञानगुण का स्वयं अपने उपादानपने से अस्तित्व है।

(२) सर्व गुण यथार्थतया तो अपने-अपने कर्ता हैं, उसमें षट् कारकों में जो कर्ता नाम का गुण है, वह निमित्त है।

इसप्रकार हर जगह शास्त्र के कथन को अपेक्षा द्वारा ही यथार्थ समझना चाहिये।

प्रश्नः—व्यापार-धंधा करनेवाले को सम्यग्दर्शन प्रगट हो सकता है ?

उत्तरः—बाह्य व्यापार करते-करते (दृष्टि बहिर्मुख होने से) सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता, परंतु बाह्य का लक्ष्य छोड़कर शुद्धचैतन्य के व्यापार में गहरा उतर जानेवाले को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। भरत चक्रवर्ती आदि को गृहस्थदशा में बाह्य प्रवृत्ति अधिक देखने में आती थी, तथापि उपयोग को अंतर में ले जाकर वे आत्मा का अनुभव करते थे। मैं अनंत बल संपन्न हूँ, मुझे किसी अन्य की आवश्यकता नहीं है, ऐसा अंतरस्वभाव का माहात्म्य आये, उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है और साथ में निर्विकल्प आनंद भी आता है।

❀ पर्याय का क्रमनियमित न मानकर आगे-पीछे होना माने तो वस्तुस्वभाव सिद्ध नहीं होता। अपने-अपने अवसर में परिणाम होते हैं (प्रवचनसार गाथा ९९) तथा प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का जन्मक्षण है, वस्तु के परिणाम क्रमबद्ध ही होते

हैं। जिनके त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव का निर्णय है, उनको क्रमबद्धपर्याय का निर्णय सच्चा है। मात्र पर्याय के क्रम को देखा करे परंतु अक्रमरूप द्रव्यस्वभाव की दृष्टि न करे, उसके क्रमबद्ध का निर्णय सच्चा नहीं, मात्र धारणारूप है।

❀ आत्मज्ञान ही ज्ञान है, अन्य कोई ज्ञान नहीं अर्थात् शास्त्रज्ञान, वह सच्चा ज्ञान नहीं। आत्मश्रद्धा ही सम्यक्श्रद्धा है, अन्य कोई श्रद्धा नहीं अर्थात् व्यवहारश्रद्धा, वह सच्ची श्रद्धा नहीं। आत्मस्थिरता ही सम्यक्चारित्र है, अन्य कोई चारित्र नहीं अर्थात् व्यवहारचारित्र, वह सच्चा चारित्र नहीं है, ऐसा अरहंत भगवान ने कहा है। ऐसा जानकर जो सम्यक्-श्रद्धा करे, वह भव्य है।

❀ स्त्री, पुत्र, धन, वैभव आदि तो बहुत दूर रहे, इन्हें तो भूल जाने में ही सार है; परंतु यहाँ तो एक समय की पर्यय में अनादि से जो आत्मबुद्धि है, इसे भी भूल जाओ और त्रैकालिक ज्ञानानंदस्वभाव जो गुप्त रहा हुआ तत्त्व है, उसे देखो! अनुभव करो! अनेक रूप का अनुभव छोड़ दे और एकरूप आत्मतत्त्व का अनुभव कर, ऐसा ज्ञानियों का कहना है।

प्रश्नः—क्या वर्तमान में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है?

उत्तरः—वर्तमान में ही क्या, तीनों काल और नरकादि चारों गतियों में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। वर्तमान अंश-पर्याय पर ही अनादि की दृष्टि पड़ी हुई है, उसे गौण करके पर्याय के पीछे जो परिपूर्ण निज परमात्मतत्त्व पड़ा है, इसका विश्वास-दृष्टि करने पर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

❀ आत्मा को क्रोध, मान, माया और लोभवाला मानना, यह तो पर्यायबुद्धि ही है; परंतु आत्मा को मति-श्रुतज्ञान की पर्यायवाला मानना, यह भी पर्यायबुद्धि है। पर्याय में इन पर्यायों के भाव हैं सही, इसलिये उस अपेक्षा से सत्यार्थ है, परंतु दृष्टि के विषयभूत त्रैकालिक सामान्य द्रव्य में इन पर्यायों का अभाव होने से यह सब भेद असत्यार्थ हैं।

❀ दोनों नयों का परस्पर विषय में विरोध है, वह विरोध स्याद्वाद अर्थात् कथंचित् विवक्षा से मिटता है। जो सत् है, वह असत् कैसे हो? तो कहते हैं

कि स्व से सत् है, वह पर से असत् है। जो नित्य हो, वह अनित्य कैसे हो? तो कहते हैं कि द्रव्य से नित्य है, वह पर्याय से अनित्य है। जो एक हो, वह अनेक कैसे हो? तो कहते हैं कि जो वस्तु से एक हो, वह गुण-पर्यायों से अनेकरूप है। जो शुद्ध हो, वह अशुद्ध कैसे हो? तो कहते हैं कि द्रव्य से शुद्ध है और पर्याय से अशुद्ध है। इसप्रकार दोनों नयों के विषय में परस्पर विरुद्धपना है, उसे कथंचित् विवक्षा से मिटाते हैं, ऐसा जिनशासन में स्याद्वाद का स्वरूप है।

❀ अहो! यह जीव चैतन्य के आनंद को भूल गया है और वह विषयों में से आनंद लेने के लिये उस ओर दौड़ता है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सात सौ वर्ष के आयुष्यकाल में तीव्र भोगासक्ति के भाव से ३३ सागरोपम का आयुष्य बाँधकर नरक में महादुःख भोगता है। यहाँ उसके एक श्वांस के काल की भोगवासना के भाव का फल ११५६९६५ पल्योपम प्रमाण नरक का दुःख भोग रहा है। एक पल्य में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। इसप्रकर ३३ सागरोपम तक पापभावों का फल भोगता है; तथा जो जीव सीधा होकर चैतन्य के आनंद का अनुभव कर सम्यग्दर्शन प्रगट करता है, वह जीव उसके बल से सादि-अनंत अनंतकाल तक अतीन्द्रिय महा आनंद को भोगता है। जो जीव सुख-दुःख के परमार्थ स्वरूप को जानत है, उस जीव को भगवान ही विचक्षण पुरुष कहते हैं और दुःख में सुख माननेवालों को पागल कहते हैं।

❀ 'सदव्वाओ सुगई परदव्वाओ दुग्गई।' (मोक्षपाहुड़, गाथा १६) सर्वज्ञ परमात्मा की भक्ति का राग उत्पन्न होना, उसको भी दुर्गति कहा जाता है। शुभराग से स्वर्ग, राजा, सेठादि पद की प्राप्ति होती है, वे भी परमार्थ से दुर्गति हैं; सुगति तो एक मोक्ष ही है। परद्रव्य पर लक्ष जाना ही दुर्गति है, इसमें चैतन्य की सुगति नहीं। निज भगवान आत्मा पर लक्ष जाना ही एक सुगति है।

श्री परमात्मप्रकाश में कहा है कि भव-भव में समवसरण में विराजमान तीर्थंकर परमात्मा की पूजा-भक्ति की, परंतु यह तो परद्रव्य का लक्ष है,

इसलिये दुर्गति है। गृहस्थ को पाप से बचने के लिये शुभभाव होते हैं, आते हैं, उन्हें व्यवहार से उपादेय भी कहा जाता है, परंतु उसमें परद्रव्य का लक्ष होने से वह चैतन्य की सुगति नहीं। सुगति तो एक निज कारणपरमात्मा के लक्ष से ही होती है।

प्रश्नः—पर्याय का दाता द्रव्य नहीं, तो क्या पर्याय को द्रव्य का अवलंबन नहीं रहता?

उत्तरः—अवलंबन का अर्थ द्रव्यसन्मुख झुकाव होना ही है। वह ज्ञानी को सदा रहता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों निरपेक्ष सत् है।

भगवान की माताजी के साथ

दिग्कुमारी देवियों की तत्त्वचर्चा

[दिग्कुमारी देवियाँ आकर शिवादेवी माताजी की मंगल-स्तुति करती हैं। पश्चात् देवियाँ माताजी की प्रशंसा करने के लिये अपने भाव व्यक्त करती हैं।]

१ देवीः—अहो, माताजी! धन्य हो! धन्य हो! आपके पुनीत दर्शन भी लोगों को महाभाग्य से मिलते हैं और फिर आपकी पवित्र सेवा की तो क्या बात करना?

२ देवीः—माताजी! आज मनुष्यलोक में चारों ओर आनंद-आनंद ही फैल गया है। हमारे देवलोक से भी मनुष्य लोक की शोभा विशेष रमणीय दिखायी देती है।

३ देवीः—हे जगत माताजी! असंख्य देव स्वर्गलोक से द्वारिकानगरी में दौड़-दौड़कर आ रहे हैं। अहो! त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर के जीव के शुभ-आगमन से पूर्व ही दशों दिशाओं में मंगलमय वातावरण प्रसर गया है।

माताः—हाँ देवियो! यह सब तीर्थंकर भगवान का ही प्रताप है। तीर्थंकरदेव का आत्मा अनादि-अनंत मंगलमय है। जगत के तारणहार तीर्थंकर परमात्मा के गर्भ-

जन्मादि कल्याणक लाखों करोड़ों भव्य भक्तों के आत्मकल्याण में निमित्त होते हैं। इसीलिए उनको कल्याणक कहे जाते हैं।

४ देवी:—हे जगत् माता! आपकी परिणमित ज्ञानबल से निकलती वाणी भी महा मंगलमय है। आपके आत्मा का संसार समुद्र का किनारा अत्यंत निकट आ गया है। त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेव श्री नेमिप्रभु का जीव आपकी रत्नकूख में शीघ्र ही पदार्पण करनेवाला है, इसलिये हम आपकी पवित्र सेवा का लाभ लेकर अपने जीवन को सफल बनाने के लिये आये हैं।

५ देवी:—हे माता! अनंत-अनंत काल में जीव ने अनंत-अनंत बार आत्मकल्याण करने के लिये प्रयत्न किये, तथापि आज तक परिभ्रमण का अंत नहीं आया, उसका क्या कारण है?

माता:—देवी! स्थूल उपयोग से बाह्य दया-दानादिरूप आगमव्यवहार करके धर्म होता है—ऐसी मान्यता होने से परिभ्रमण का अंत नहीं आया। अध्यात्म का निश्चय जो 'निष्क्रिय ध्रुवतत्त्व' और उसके आश्रय से शुद्धव्यवहार जो निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करे तो संसार का अंत आवे। काया और कषाय की एकता तोड़कर 'मैं अखंड परिपूर्ण ज्ञायक ही हूँ'—ऐसा आत्मसन्मुख होकर मंथन करने पर अंतरंग में से ही मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

६ देवी:—हे माता! मोक्षमार्ग में आश्रयभूत तत्त्व क्या है?

माता:—देवी! मोक्षमार्ग में आश्रयभूत तत्त्व एकमात्र निष्क्रिय शुद्ध परमात्मस्वरूप अपना ध्रुव आत्मा ही है, समकित से लेकर केवलज्ञान तक एक ध्रुव ज्ञायक का ही आश्रय है। प्रतिसमय होनेवाले उत्पाद-व्यय से निरपेक्ष 'अखंड ज्ञायक ध्रुव ही मैं हूँ' ऐसा अपना त्रिकाली अस्तित्व स्वीकार करने पर उसको सारे विश्व से उदासीनता आ जाती है।

७ देवी:—हे माता! ऐसे अखंड ज्ञायकतत्त्व की साधना करने के लिये प्रथम क्या करना चाहिये?

माता:—देवी! प्रथम तो देव-शास्त्र-गुरु की अंतर-बाह्य समीपता करके सूत्रों के

अर्थों को अंतरंग में शोधन करके, परमार्थ ऐसा भगवान ज्ञाता द्रव्य और अभूतार्थ ऐसे विभावों की संधि को बराबर जानकर, तीक्ष्ण प्रज्ञाछैनी द्वारा उस संधि पर प्रहार करना। पर को निरवशेषरूप से पर जानकर, वहाँ से विरक्त होकर, अतीन्द्रिय आनंद प्राप्त करने के लिये अंतरंग में एकत्व को साधना चाहिये। प्रथम में प्रथम करने योग्य यह एक ही है।

८ देवी:—अहो, माताजी! ऐसी तत्त्व प्रदीपिका चर्चा सुनने पर भी अद्भुत आनंद आता है! अहो! हमारी देवी पर्याय भी आपकी पवित्र सेवा से सफल हुई। इस संसार महार्णव से तरने में महापुरुषों की मात्र एक क्षण की संगति भी दिव्य नौका समान है।

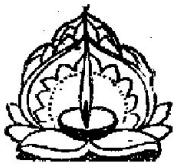

शिवादेवी माता और देवियों के बीच चर्चा

१ देवी:—हे आनंददायिनी माताजी! सारे विश्व में महागौरववंत स्त्रीरत्न आप ही हो। आपका पुत्ररत्न समस्त विश्व में कल्याणपंथ का प्रणेता, अखिल विश्व का आनंदकारी नाथ है, इसलिये माताजी! हम आपको और आपके महिमावंत पुत्ररत्न को परमभक्ति से पूजते हैं।

२ देवी:—माताजी! मोक्षप्रणेता महामंगलमय भगवान आपके उदर में विराजमान है, इसलिये आपकी पवित्र मुखमुद्रा, आपकी प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक शब्द महामांगलिक लगते हैं।

माता:—हाँ देवी! भगवान तो महामंगलस्वरूप हैं, परंतु अपना आत्मा भी महामांगलिक है। निश्चय से विश्व में सर्वोत्कृष्ट मंगलरूप यह 'भगवान आत्मा' ही है। जिसप्रकार भगवान की महिमा अचिंत्य है, उसीप्रकार निज

चैतन्यदेव की अचिंत्य रिद्धि के सामने इंद्र का इंद्रासन भी तुच्छ तिनके के समान है। अनंत-अनंत गुणों का सागर ध्रुव निजपरमात्मा की निर्विकल्प प्रतीतिरूप परिणमन ही जीवन में महामंगलरूप है। इसलिये बाह्य में पंचपरमेष्ठी भगवंत और अंतर में भगवान आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई महिमावंत पदार्थ नहीं है।

३ देवी:—हे माताजी! इस विश्व में अवश्य करने योग्य क्या कार्य है? जिससे इस भयंकर जन्म-मरणरूपी संसारसागर से तिरा जा सके?

माता:—देवी! अवश्य में अवश्य करने योग्य कार्य एक शुद्ध आत्मा का निर्विकल्प अनुभव ही है। जो इस कार्य को छोड़कर अन्य कार्य करते हैं, वे अमृत को छोड़कर विष को पीते हैं। शुद्धात्मा की आराधना करने पर अंतरंग में ही निर्विकल्प समाधि प्रगट होती है, वही उत्तम तीर्थ है। निर्विकल्प समाधिरूपी जहाज में बैठा हुआ प्राणी आनंद से संसार-सागर के पार उतर जाता है।

४ देवी:—हे माताजी! ऐसी मंगल आराधना की बातें भी महा आनंददायक लगती हैं और आराधना करने के भाव उग्र होते हैं...!

माता:—देवी! जो अनंत-अनंत काल से नहीं किया, ऐसा कार्य करने के लिये आनंद से तैयारियाँ करो। निज चैतन्यभगवान आत्मा के सामने सारे विश्व का वैभव पानी भरता है, ऐसा महिमावंत तत्त्व तुम हो, इसलिये अत्यंत रुचि और उल्लास से इस आराधना का प्रारंभ करो। देखिये:—

साधक जीव आराधना करने पर अत्यंत प्रमोद से कहता है कि अहो! मैंने दीक्षा के लिये एक महान महोत्सव रचा है, उसमें तीर्थंकरदेव और पंचपरमेष्ठी भगवान पधारे हैं। (—शेष अगले अंक में)

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का मंगल प्रस्थान तारीख २३-२-७६ के दिन प्रातःकाल ५.०० बजे बाजिंत्र के मंगलस्वर और मुमुक्षु भाई-बहिनों के जय-जयकार शब्द के बीच सौराष्ट्र के कुछ नगरों एवं महाराष्ट्र के प्रमुख नगर बम्बई में धर्मप्रभावना हेतु हुआ। उसके कुछ क्षण पहले उनके हृदयोद्गार निकले कि—श्री समयसार गाथा में अमृतचन्द्राचार्यदेव ने आत्मा को भगवान ज्ञानस्वभाव कहा है और गाथा ७२ में 'भगवान आत्मा' इसप्रकार संबोधन किया है। भगवान आत्मा जीवत्वशक्ति, सुखशक्ति, सर्वज्ञत्वशक्ति, सर्वदर्शित्वशक्ति, स्वच्छत्वशक्ति आदि अनंत शक्तियों से भरपूर है। ऐसे आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है। अंत में पूज्य स्वामीजी ने कहा है कि—भगवती प्रज्ञाछैनी के द्वारा जीवन में भेदविज्ञान कर लेना अति आवश्यक है।

सोनगढ़ से विदा होकर पूज्य स्वामीजी प्रातः ८.०० बजे लींबड़ी नगर में पधारे, जहाँ उनका हर्षोल्लास सहित भावभीना स्वागत किया गया।

शाश्वत तीर्थधाम श्री सम्मेदशिखरजी-मधुवन में श्री दिगम्बर जैन तेरापंथी कोठी में आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का भव्य आयोजन

फाल्गुन शुक्ला ८, सोमवार, दिनांक ८-३-७६ से चैत्र कृष्णा २, बुधवार, दिनांक १७-३-७६ तक १० दिन का आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सम्पन्न हो रहा है। इस शिविर में आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर; श्री डॉ. हुकमचंदजी शास्त्री, जयपुर; श्री पंडित ज्ञानचंदजी, विदिशा; श्री पंडित नेमीचंदजी रखियाल, श्री पंडित राजमलजी, भोपाल; श्री पंडित बाबूलाल नाथालाल, फतेपुर आदि विद्वान पधारेंगे, जिनके आध्यात्मिक प्रवचनों का एवं धार्मिक शिक्षण का अपूर्व लाभ प्राप्त होगा। तदुपरांत श्री नंदीश्वर मंडल-विधान पूजा का कार्यक्रम भी रखा गया है। प्रत्येक कार्यक्रम निश्चित समय पर संपन्न होगा। साधर्मी भाई-बहिन इस अपूर्व अवसर का लाभ अवश्य उठावें।

श्री दिगम्बर जैन शिक्षण शिविर समिति
श्री सम्मेदशिखर-मधुवन

सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट पर वार्षिक मेले का भव्य आयोजन

श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट (म.प्र.) पर वार्षिक मेले का फाल्गुन सुदी १२ से १५ तक तारीख १३ से १५ मार्च १९७६ तक भव्य आयोजन किया गया है। अत: सर्व धर्म प्रेमी भाई-बहिनों से प्रार्थना है कि वे इस मेले में अवश्य पधारकर परम पुनीत सिद्धक्षेत्र की वंदना, भक्ति, पूजन एवं आध्यात्मिक प्रवचनों का अपूर्व लाभ प्राप्त करें। पूनम के दिन कलश, जुलूस और १००८ बाहुबलीस्वामी का महामस्तकाभिषेक भी होगा।

हुकमचंद मल्लासा,
संयोजक, सिद्धक्षेत्र कमेटी सिद्धवरकूट (म.प्र.)

श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिरजी में शिक्षण-शिविर का महान आयोजन

श्री णंग-अणंग आदि साढ़े पाँच करोड़ मुनिराज जिस परम पावन क्षेत्र से मोक्ष पधारे हैं, ऐसे पुनीत सिद्धक्षेत्र श्री सोनागिरजी पर दिनांक १५ मार्च से १९ मार्च १९७६ तक वार्षिक मेले के सुअवसर पर आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का महान आयोजन किया जा रहा है। जिसमें पंडित श्री धन्नालालजी ग्वालियर, पंडित श्री ज्ञानचंदजी विदिशा व पंडित श्री केशरीचंदजी 'धवल' पधार रहे हैं, साथ ही अनेक विद्वानों के पधारने की संभावना है।

अत: सर्व धर्मप्रेमी बंधुवरों से निवेदन है कि दिनांक १५ मार्च से १९ मार्च तक श्री सोनागिरजी (जो आगरा-झाँसी मुख्य रेलवे लाइन पर स्थित डबरा-दतिया स्टेशन के बीच है) पधारकर परम पुनीत क्षेत्र की वंदना-भक्ति-पूजन व आध्यात्मिक प्रवचनों का अपूर्व लाभ प्राप्त करें।

—केशरीचंद पाटनी, मंत्री, मुमुक्षु मंडल ग्वालियर (म.प्र.)

गोरमी (जिला भिण्ड) (म.प्र.)—महा सुदी १ से पंचमी तक श्री गेंदालालजी शास्त्री बूंदी के द्वारा पूर्ण विधि-विधान सहित वेदी-प्रतिष्ठा एवं चौबीस तीर्थंकर विधान महोत्सव बड़े ही आनंद के साथ संपन्न हुआ। इस सुअवसर पर पंडित श्री ज्ञानचंदजी विदिशा एवं पंडित केशरीचंदजी धवल के सारगर्भित प्रवचन हुए, जिससे समाज बहुत ही प्रभावित हुई। मथुरा से सुभाषचंदजी पंकज के आने से उत्सव में आनंद आया। श्री गेंदालालजी बूंदी एवं श्री ज्ञानचंदजी विदिशा द्वारा एक वीतराग विज्ञान पाठशाला की स्थापना हुई।

— नरेन्द्रचंद जैन

नये प्रकाशनः—

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट भावनगर की ओर से हिंदी में श्री समयसार नाटक, पंचास्तिकाय तथा गुजराती में पंचास्तिकाय, प्रवचनसार प्रगट हो चुके हैं। अल्प समय में हिंदी में श्री प्रवचनसार, सम्यक्ज्ञानदीपिका तथा इष्टोपदेश प्रकाशित होनेवाले हैं।

वैराग्य समाचारः—

शिकोहाबाद, जिला मैनपुरी (उ.प्र.)—श्री लाला कम्पिलादासजी की धर्मपत्नी श्रीमती कटोरीदेवी जैन का ८-१-७६ को स्वर्गवास हो गया है। आपकी धार्मिक वृत्ति होने से समाज में आपके द्वारा अनेक धार्मिक कार्य हुए हैं। स्वर्गस्थ आत्मा सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त पाकर अपना शीघ्र आत्मकल्याण करे, यही भावना...।

सहारनपुर (उ.प्र.)—रा.सा. ला. प्रद्युम्नकुमारजी का निधन दिनांक १५-२-७६ को हो गया है। आप समाज के महान व्यक्ति थे। आपके द्वारा समाज में अनेक धार्मिक कार्य हुए हैं। स्वर्गस्थ आत्मा वीतराग देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त पाकर शीघ्र शाश्वत परमानंदमय आत्मलाभ की प्राप्ति करे, यही भावना....।

जड़-चेतन की भिन्नता

वरनादिक रागादि यह, रूप हमारौ नांहि।
एक ब्रह्म नहि दूसरौ, दीसै अनुभव मांहि॥

अर्थ—शरीर संबंधी रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि व राग-द्वेष आदि विभाव सब अचेतन हैं, ये हमारे स्वरूप नहीं हैं; आत्म-अनुभव में एक ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ नहीं भासता।

भावार्थ—शरीर संबंधी रूप, रस, गंध, वर्ण, स्पर्शादि तो अचेतन एवं जड़ हैं, परंतु पुण्य-पापभाव भी अचेतन हैं। जिस शुभभाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, वह भी अचेतन है। वीतरागी भावलिंगी संत को पचंमहाव्रतादि का और पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक को अणुव्रतादि का शुभ विकल्प होता है, वह भी अचेतन है क्योंकि वह पराश्रित भाव है, इसलिये उनको निश्चय से अचेतन एवं जड़ कहा गया है। शुभभाव है तो आत्मा की पर्याय, परंतु निश्चय से वह आत्मा की पर्याय नहीं, अचेतन की पर्याय है। जिस जीव को शरीर, मन, वाणी और रागादि से भिन्न शुद्ध चैतन्य आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति हो, उसको राग अचेतन की पर्याय है—ऐसा सच्चा ज्ञान होता है। आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति किये बिना कोई जीव कहे कि रागादि तो अचेतन हैं, चाहे जैसे रागादि होवें, उनसे हमको क्या ? हम तो शुद्ध चैतन्यस्वरूपी आत्मा हैं। मोह नाचो तो नाचो !—ऐसा कहनेवाले की दृष्टि तो पर एवं राग पर पड़ी हुई होने से रागादि से भिन्न शुद्ध चैतन्य आत्मा की दृष्टि तो हुई नहीं है तो फिर 'मोह नाचो तो नाचो'—ऐसा कहकर वह स्वच्छन्दरूप से परिणमन कर रहा है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है।

धर्मी जीव को शुद्ध चैतन्यघन भगवान आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति है, अतः वह व्यवहारनय को भी अचेतन की पर्याय मानकर उन्हें अपना स्वरूप नहीं मानता। उसको अपनी दृष्टि में एक ब्रह्मस्वरूप आत्मा ही दिखायी देता है, अन्य कोई वस्तु भासित नहीं होती।

वढवाण शहर का

नवनिर्मित भव्य दिगंबर जिनमंदिर

जिसमें मूलनायक १००८ श्री वर्द्धमानस्वामी आदि तीर्थंकर भगवंतों के विशाल जिनबिंबों को पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक फाल्गुन शुक्ला ८ सोमवार तारीख ८-३-७६ के दिन विराजमान किया जा रहा है। अध्यात्मयुग-प्रवर्तक पूज्य श्री कानजीस्वामी की मंगल छत्रछाया में यह प्रतिष्ठा-महोत्सव बड़ी धामधूम एवं हर्षोल्लासपूर्वक फाल्गुन शुक्ला १, सोमवार, दिनांक १-३-७६ से फाल्गुन शुक्ला ८, सोमवार, दिनांक ८-३-७६ तक मनाया जा रहा है। प्रतिष्ठा की मंगल-विधि ग्वालियर निवासी श्री पंडित धन्नालालजी करा रहे हैं। सौराष्ट्र-गुजरात के अलावा राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र आदि दूर-दूर के प्रांतों से मुमुक्षुगण इस महोत्सव में भाग लेने हेतु आ रहे हैं। प्रतिष्ठा-महोत्सव संबंधी विशेष समाचार आप आत्मधर्म के अगले अंक में पढ़ेंगे।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (३६६)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) प्रति २५००